२. अन्तर्यात्रा : एक दृष्टि

प्रथम देवलोक के इन्द्र, 'शक्रेन्द्र' आनन्द विभोर होकर कहने लगे—धन्य है श्रेणिक सम्राट को, जिनके अन्तर्मानस में देव, गुरु और धर्म के प्रति अनन्त आस्था है। कोई देवशक्ति भी उनकी श्रद्धा को हिला नहीं सकती। धन्य है क्षायिक सम्यक्त्वधारी सुश्रावक को।

शक्रेन्द्र के मुखारविन्द से भावपूर्ण उद्‌गार श्रवण कर एक देव ने कहा—स्वामी! आप अत्यधिक भावुक है। भावना के प्रवाह में आप बहते रहते हैं। मानव की क्या शक्ति है जो हमारे सामने टिक सके। कपूर की तरह उसकी श्रद्धा प्रतिकूल पवन चलते ही उड़ जायेगी। यदि आपको विश्वास न हो तो मैं इसे सिद्ध कर बता दूँगा। शक्रेन्द्र मौन रहे और वह देव परीक्षा की कसौटी पर कसने हेतु उसी क्षण वहाँ से चल पड़ा।

राजगृह नगर के निवासी भगवान् महावीर के आगमन के समाचारों को सुनकर आनन्द विभोर थे। सम्राट श्रेणिक ने सुना। उसका मन मयूर नाच उठा, हृदय-कमल खिल उठा। वह सपरिवार चतुरंगिणी सेना सजाकर श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन हेतु चल पड़ा। ज्योंही मध्य बाजार के बीच सवारी पहुँची, त्योंही उस देव ने अपनी माया फैलाई। देव ने एक श्रमण का वेश धारण किया। पर कन्धे पर मछलियों को पकड़ने का जाल पड़ा हुआ था। वह मछली पकड़ने हेतु सरोवर की ओर जा रहा था। उसे देखकर कुछ व्यक्तियों ने उपहास के स्वर में कहा—महाराज! देखिये, वे आपके गुरुवर आ रहे हैं। पहले उनके दर्शन कर लीजिए।

सम्राट के सन्निकट जब वह मायावी साधु पहुँचा, तब सम्राट ने कहा—तुमने कन्धे पर यह जाल क्यों डाल रखी है? श्रमण वेश को क्यों लज्जित कर रहे हो?

उस मायावी साधु ने मुस्कराते हुए नाटकीय ढंग से कहा—राजन्! मैं पहले क्षत्रिय था। मांस और मछलियाँ खाने की आदत थी। भगवान् महावीर के सभी साधु मांसाहार और मत्स्याहार करते हैं उनके परम भक्त लोग उन्हें गुप्त रीति से लाकर दे देते हैं। पर मैं भोला रहा, मेरे कोई भक्त नहीं, जिस कारण विवश होकर मुझे मछलियाँ पकड़ने हेतु सरोवर पर जाना पड़ रहा है।

सभी श्रोतागणों की श्रद्धा डगमगा गई। उनके मुखारविन्द से अनास्था के स्वर फूट पड़े, पर सम्राट श्रेणिक ने कहा—तुम मिथ्या बोल रहे हो। अपना पाप उन महान् पुण्य पुरुषों पर मंढ़ने का प्रयास कर रहे हो। धिक्कार है तुम्हें, जो इस प्रकार मिथ्या प्रलाप करते हो।

सम्राट की सवारी आगे निकल गई। लोगों ने देखा—एक सगर्भा साध्वी किसी दुकान से अजमा, किसी दुकान से सोंठ और किसी दुकान से घी की याचना कर रही है। वह कह रही है—"मैं आसन्नगर्भा हूँ इसलिए मुझे इन वस्तुओं की आवश्यकता है।"

सम्राट के साथ वाले व्यक्तियों ने कहा—स्वामी! आपने पहले गुरुदेव के दर्शन किये अब गुरुणी जी के भी दर्शन कर लीजिए। देखिये, भगवान् महावीर के श्रमण और श्रमणियों का कितना नतिक पतन हो चुका है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट के सामने वह साध्वी आकर खड़ी हो गई और कहने लगी—मेरे प्रसूति की व्यवस्था करवा दीजिए। आप सोचते होंगे कि मैं पतिता हूँ, पर भगवान् महावीर की सभी साध्वियाँ इसी तरह चरित्रहीना हैं।

सम्राट ने सक्रोश मुद्रा में कहा—तुम पतिता हो और अपने दोष को छिपाने हेतु तप और त्याग की ज्वलन्त प्रतिमाओं पर लांछन लगा रही हो? धिक्कार है तुझ। यह कहकर सम्राट ने अपनी सवारी आगे बढ़ा दी। कुछ ही दूर सम्राट की सवारी आगे पहुँची कि एक दिव्य पुरुष ने प्रकट होकर कहा—धन्य है, जैसा शक्रेन्द्र ने कहा था उससे भी अधिक आपको आस्थावान देखकर मेरा हृदय श्रद्धा से आपके चरणों में नत है। मैंने ही परीक्षा लेने हेतु साधु और साध्वी का रूप धारण किया था, पर आप परीक्षा में पूर्ण सफल हुए।

सम्राट् श्रेणिक न बहुश्रुत थे, न महामनीषी थे, न वाचक थे, पर सम्यग्दृष्टि होने के कारण आगमी चौबीसी में वे तीर्थंकर जैसे गौरवपूर्ण पद को प्राप्त करेंगे। कहा है—

न सेणिओ आसि तया बहुस्सओ
न यावि पन्नतिधरो न वायगो।
सो आगमिस्साइ जिणो भविस्सई
समिक्ख पन्नाह वरं खु दंसणं॥

सम्यग्दर्शन के दो प्रकार है। एक व्यावहारिक सम्यग्दर्शन है और दूसरा निश्चयसम्यग्दर्शन। व्यवहारसम्यग्दर्शन वह कहलाता है जिसमें साधक सर्वज्ञ सर्वदर्शी अट्ठारह दोष रहित वीतराग प्रभु को देव के रूप में स्वीकार करता है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति के धारक निर्ग्रन्थ संत को गुरु रूप में मानता है। अहिंसा, संयम, तपरूप धर्म को स्वीकार करता है। इस प्रकार देव, गुरु धर्म के प्रति जो पूर्ण निष्ठावान होता है वह व्यवहार की दृष्टि से सम्यग्दृष्टि कहलाता है। उसके जीवन के कण-कण में, मन के अण-अणु में देव गुरु धर्म के प्रति अपार आस्थाएँ होती हैं। सम्राट् श्रेणिक की तरह वह सदा परीक्षण प्रस्तर पर खरा उतरता है। उपासकदशांग सूत्र में आनन्द, कामदेव आदि श्रावकों का वर्णन आता है जिनकी देव परीक्षा लेते हैं। पर वे मेरु पर्वत की तरह अडोल रहे, अकम्प रहे। पर आज हमारी श्रद्धा कितनी कमजोर है, मन्दिर की पताका की तरह अस्थिर है। हम मिथ्या और कपोल कल्पित बात को सुनकर ही विचलित हो जाते हैं, हमारी आस्थाएँ डगमगा जाती हैं। हम कहलाने को सम्यग्दृष्टि और श्रावक कहलाते हैं पर हमें थर्मामीटर लेकर अपने अन्तर्हृदय को मापना है कि हमारे में सम्यग्दर्शन है या नहीं। केवल बातें बनाने से सम्यग्दर्शन नहीं आता। कदाचित् भ्रमवश मन में कुशंका उत्पन्न हो जाए तो सम्यग्दृष्टि साधक का दायित्व है उस कुशंका का पहले निवारण करें। सम्यग्दृष्टि भाडरप्रवाही नहीं होता। वह अपनी मेधा से सत्य-तथ्य का निर्णय करता है।

जैन साहित्य में आई हुई एक घटना है। एक महान् आचार्य अपने विराट शिष्य समुदाय सहित विहार करते हुए एक नगर में पधारने वाले थे। जब नागरिकों ने सुना तो उनका हृदय बाँसों उछल पड़ा। हजारों की संख्या में श्रद्धालुगण आचार्य प्रवर के स्वागत हेतु बरसाती नदी की तरह उमड़ते हुए आगे कदम बढ़ा रहे थे। आचार्य प्रवर कहाँ तक आ गये हैं यह जानने हेतु एक जिज्ञासु ने सामने से आते हुए राहगीर से पूछा—बताओ, हमारे गुरुदेव कहाँ तक आ गये हैं।

राहगीर ने कहा—रास्ते में जो तालाब है उस तालाब पर बैठकर वे पानी पी रहे थे। मैं उन्हें तालाब में पानी पीते छोड़ आया हूँ।

राहगीर के मुंह से अप्रत्याशित बात सुनकर सभी एक-दूसरे का मुँह झांकने लगे। एक दूसरे से कहने लगे—बड़ा अनर्थ है। आचार्य होकर तालाब में पानी पीये, जो श्रमणमर्यादा के विपरीत है। हम तो उन्हें आचारनिष्ठ मान रहे थे, पर घोर कलियुग आ गया है। आचार्य भी आचार्य की

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मर्यादा को विस्मृत हो चुके हैं फिर दूसरे सन्तों का तो कहना ही क्या ? आगे बढ़ते हुए कदम एक क्षण में रुक गये और सभी श्रद्धालुगण नगर की ओर लौट पड़े ।

धीरे-धीरे रास्ते को पार करते हुए आचार्य नगर में पहुँचे । पर चारों ओर अनास्था का वातावरण था । न स्वागत था, न सन्मान था । पूछते-पाछते आचार्य प्रवर धर्मस्थानक में पहुँचे । आचार्य प्रवर सोचने लगे कि इस नगर के श्रद्धालुओं की भक्ति के सम्बन्ध में मैंने बहुत कुछ सुन रखा है पर आज तो बिल्कुल विपरीत ही दिखाई दे रहा है । श्रद्धालुओं की श्रद्धा क्यों डगमगा गई है ? इनका आचरण ही इस बात का साक्षी है कि इनके मन में कहीं भ्रम का भूत पैठ गया है और जब तक वह नहीं निकलेगा तब तक उनका अन्तर्मानस ज्योतिर्मय नहीं बनेगा ।

आचार्य प्रवर ने एक भद्र श्रावक को अपने पास बुलाया और स्नेहसुधा स्निग्ध शब्दों में उससे पूछा कि बताओ हमने तुम्हारे नगर की बहुत प्रशंसा सुनी थी । यहाँ की भक्ति सुनकर ही हम यहाँ पर विविध कष्ट सहन कर आये हैं पर आज न तो एक श्रावक दिखाई दे रहा है और न एक श्राविका ही । क्या बात है ?

उस भोले श्रावक ने बताया कि हम, हमारे संघ के सभी प्रमुख श्रावक और श्राविकाएँ आपको लिवाने हेतु मीलों तक पहुँचे । बहुत ही उल्लास और उत्साहमय वातावरण था । सभी अपने आपको धन्य अनुभव कर रहे थे । सामने से राहगीर ने हमारी जिज्ञासा पर बताया था कि आप तालाब पर पानी पी रहे हैं इसलिए हमारे सभी के मन अनास्था से भर गये । जैन सन्त कच्चे पानी को स्पर्श भी नहीं करता पर आप तो अपने शिष्यों के साथ तालाब पर पानी पी रहे थे । हमारा अनमोल सिर ऐरे-गैरे के चरणों में झुकने के लिए नहीं है । इसीलिए हम सब लौट आये ।

आचार्यदेव को अनास्था का कारण ज्ञात हो गया और उन्होंने कहा कि यहाँ के प्रमुख विवेकशील श्रद्धालुओं को तुम संदेश दो कि आचार्य प्रवर तुम्हें बुला रहे हैं । सन्देश सुनते ही श्रद्धालुगण उपस्थित हुए । आचार्यप्रवर ने कहा—जिस व्यक्ति ने यह बात कही कि हम तालाब में पानी पी रहे थे आप उस व्यक्ति को जरा बुलायें । सुनते ही कुछ तमाशबीन यह सोचकर कि अब बड़ा मजा आयेगा उसे पकड़कर बाजार से ले आये ।

आचार्यप्रवर ने उस राहगीर से पूछा—तुम उधर से आ रहे थे और हम लोग तालाब की पाल पर बैठे हुए थे, बताओ तालाब में पानी था या नहीं ? उस राहगीर ने कहा—उस तालाब में तो एक बूँद भी पानी नहीं था । फिर हम पानी कहाँ से पी रहे थे ? उस राहगीर किसान ने कहा—तुम्हारे पास जो लकड़ी के पात्र रहते हैं । उसमें जो पानी था वह पानी तुम पी रहे थे ।

आचार्य देव ने श्रोताओं को कहा—बताओ, इसमें हमने किस दोष का सेवन किया । हम जिस गाँव से आये थे, वहाँ से अचित्त पानी साथ लाये थे । क्षेत्र मर्यादा समाप्त हो गयी थी, इसलिए हमने वहाँ पर पानी का उपयोग कर लिया था । सभी श्रोताओं को अपनी भूल ज्ञात हुई कि हमने बिना निर्णय के ही आचार्यदेव पर और संतों पर लांछन लगाया । सभी ने उठकर नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमायाचना की । इस प्रकार कई बार भ्रम से भी अनास्था पैदा हो जाती है । पर सम्यग्दृष्टि साधक भ्रम के जाल में उलझता नहीं । वह सत्य तथ्य को समझता है । वह जानता है कि शंका कुशंकाओं से सम्यक्त्व का नाश होता है । सम्यक्त्व का आलोक धुँधला होता है । चाहे देव के सम्बन्ध में हो, चाहे गुरु के सम्बन्ध में हो और चाहे धर्म के सम्बन्ध में हो, वह पूर्ण रूप से आस्थावान बनता है ।

सम्यक्त्व के पाँच दूषण है । शंका, काँक्षा, विचिकित्सा, परपाषण्ड प्रशंसा और परपाषण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्तव। इन दूषणों से साधक को प्रतिपल प्रतिक्षण बचते रहना है।

व्यवहार सम्यक्त्व को पाँच रूप से देखा जा सकता है, जिसे सम्यक्त्व के पाँच लक्षण कहे हैं—सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य। समयाभाव से इस सम्बन्ध में इस समय विवेचन नहीं करूँगी।

अब हमें समझना है कि निश्चयदृष्टि से सम्यग्दर्शन क्या है? निश्चयदृष्टि से आत्मा ही देव है, आत्मा ही गुरु है और आत्मभाव में रमण करना ही धर्म है। आत्मा अकाम निर्जरा के द्वारा सात कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को कम करते-करते जब देश न्यून कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति वाला बन जाता है। तब आत्मा में सहज उल्लास समुत्पन्न होता है। यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण से रागद्वेष की ग्रन्थी का जब भेदन करता है, तब निश्चयसम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। निश्चय सम्यग्दृष्टि साधक भेदविज्ञान के हथौड़े से आत्मा पर लगे हुए कर्मबन्धनों को तोड़ डालता है, जन्म-मरणरूपी संसार का उच्छेद कर देता है। भेद विज्ञान के प्रथम प्रहार में ही कषाय चेतना चूर-चूर होने लगती है। जन्म-मरण के चक्र मिटने लगते हैं। भेदविज्ञान से आत्मा अपने स्वभाव में अवस्थित हो जाता है।

आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्ति में भेदविज्ञान का तात्पर्य समझाते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है—

अन्नमिमं सरीरं अन्नो जीवुत्ति एवं कयबुद्धी।
दुक्ख परिकिलेसकरं छिन्द ममत्तं सरीरओ।।

यह शरीर अन्य है और आत्मा अन्य है। इस प्रकार तत्त्व-बुद्धि से दुःखोत्पादक और क्लेशजनक शरीर के प्रति ममत्व का परित्याग करता है।

यह स्पष्ट है कि आत्मा और शरीर इन दोनों का स्वभाव, धर्म, गुण, प्रभृति भिन्न-भिन्न है। दोनों में आत्मीयता और तादात्म्य कभी हो नहीं सकता। शरीर जड़ है, भौतिक है, पुद्गल है। आत्मा चेतन है, अभौतिक है। शरीर में ज्ञान नहीं, पर आत्मा ज्ञानमय है दर्शनमय है वह ज्ञाता-द्रष्टा है। पर शरीर अनित्य है, विनाशी है, सड़न-गलन स्वभाव वाला पुद्गल है। जबकि आत्मा नित्य है, अविनाशी है। वह न पानी से गलता है, न हवा से सूखता है, न शस्त्र उसे काट सकता है, न अग्नि उसे जला सकती है। वह न सड़ता है और उसका न विध्वंस ही होता है।

इसीलिए सम्यग्दृष्टि के अन्तर्मानस का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सम्यग्दृष्टि जीवडा करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर थी न्यारो रहे ज्यों धाय खिलावे बाल।।

धाय पन्ना ने अपने पुत्र का बलिदान करके भी महाराणा उदयसिंह की रक्षा की थी। वह अन्तर्मन में समझती थी, उदयसिंह मेरा पुत्र नहीं है तथापि वह कर्तव्य से विमुख नहीं हुई वैसे ही सम्यग्दृष्टि संसार में रहकर भी संसार से अलग-थलग रहता है। उसका तन संसार में रहता है किन्तु मन मोक्ष में रहता है। वह सदा निजभाव और परमात्मभाव में रमण करता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने यह उद्घोषणा की कि—

"समत्तदंसी न करेइ पावं।"

निश्चय और व्यवहार दोनों ही दृष्टियों से हमने सम्यग्दर्शन पर चिन्तन किया है। निश्चय सम्यग्दर्शन एक अनुभूति है और व्यवहार सम्यग्दर्शन उसकी अभिव्यक्ति है। दोनों का मधुर समन्वय ही परिपूर्णता का प्रतीक है इसीलिए मैंने अपने प्रवचन के प्रारम्भ में सम्राट श्रेणिक का उदाहरण देकर यह तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि वे क्षायिक सम्यक्त्व के धारी थे। वे आत्मभाव में रमण करते थे तथापि देव, गुरु और धर्म के प्रति उनके अन्तर्मन में कितनी अपार श्रद्धा थी? आज का साधक उस आदर्श को अपनाएगा तो उसका इहलोक और परलोक दोनों ही सुखी होंगे।

○

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org